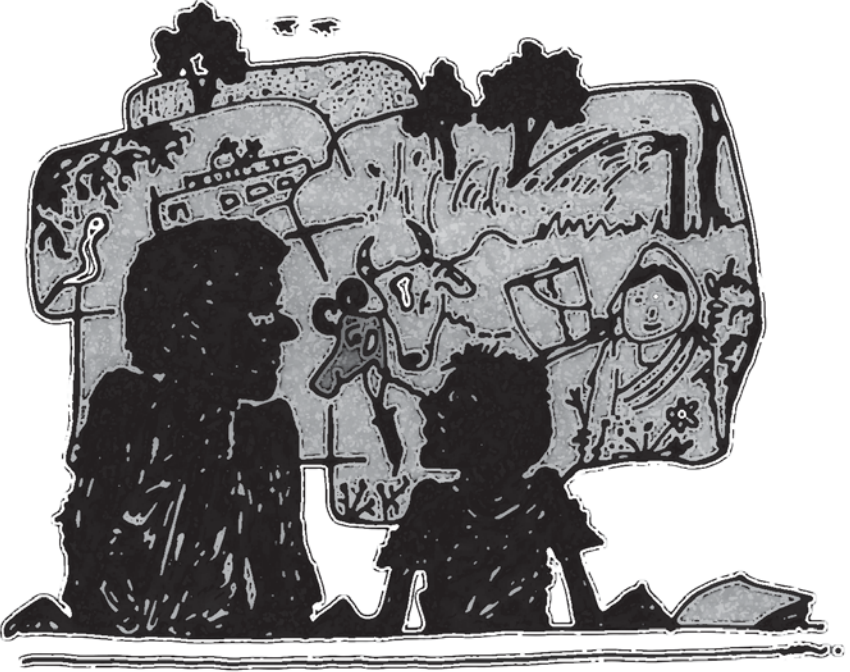


प्राथमिक कक्षाएँ एवं संवाद

जितेन्द्र कुमार



हम कई बार कक्षा में संवाद का उपयोग तो करते हैं परन्तु उस विषय-विशेष के सन्दर्भ में ही जिसकी चर्चा वहाँ हो रही होती है। यानी हम संवाद को विषय-केन्द्रित करके ही उसका उपयोग करते हैं। पर क्या संवाद एक स्वतंत्र घटक नहीं हो सकता? यह लेख संवाद के उस रूप की चर्चा करता है जो विषय-केन्द्रित न होकर रोज़मर्रा के जीवन के निजी अनुभवों पर केन्द्रित हो और फिर भी कक्षा के भीतर ही चल रहा हो।

यह लेख मेरी कक्षा में हुए अनुभवों पर आधारित है। क्योंकि यह सीधे तौर पर कक्षा व शिक्षा प्रक्रिया से जुड़ा है इसलिए इसे सार्वजनिक करना उपयोगी लगा। अक्सर कक्षाओं में संवाद को विषय-केन्द्रित रूप में समझने या देखने का प्रयास किया जाता है। संवाद गणित की कक्षा में हो, इतिहास की कक्षा में या किसी अन्य विषय की कक्षा में, वह इस समझ पर आधारित होता है कि कक्षा में संवाद बच्चों की समझ को आकार देने और विषय में उनकी रुचि बनाए रखने में सहायक होगा, और यह सही भी है।

परन्तु इस लेख में हम संवाद के उस रूप के बारे में बात करेंगे जो विषय विशेष पर केन्द्रित न होकर रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के निजी अनुभवों पर केन्द्रित है और जो कक्षा के भीतर हो रहा है। सोचने पर इस तरह का संवाद एक मामूली बात लग सकता है जिसका पाठ्यक्रम आधारित स्कूली शिक्षा से कोई सम्बन्ध नज़र न आए। पर मुझे इसके गहरे निहितार्थ नज़र आते हैं, खास तौर से प्राथमिक कक्षाओं में जहाँ छात्र केवल निजी अनुभव और प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर ही बात कर सकता है। हम एक उदाहरण से संवाद के इस रूप व उसकी प्रासंगिकता को समझने का प्रयास करेंगे। यह संवाद कक्षा-2 के छात्र दीपक और मेरे बीच उन दिनों का है जब मैं इस स्कूल में भाषा शिक्षण को लेकर कुछ समझ बनाने में लगा था।

उदाहरण

उस दिन आधी छुट्टी में सभी बच्चे घर चले गए लेकिन दीपक, सचिन और संदीप कक्षा में ही रुके रहे। तीनों मेज़ पर पड़ी किताबों को उलट-पलट कर देखने लगे। सचिन ने एक किताब छाँटी और खिड़की पर चढ़कर बैठ गया। संदीप ने लालू और पीलू छाँटी। मैंने दीपक को पकड़ कर बात करना शुरू किया। दीपक बता रहा था कि उनके खेत में पानी चल रहा है। वो घर जाने के बाद खेत पर जाएगा। उसने बताया कि एक दिन उसके पापा होला लाए थे। वे भी होला बोएँगे।

“होला क्या होता है?”

“सर, होला भूँज के खाते हैं। एक दिन हमारे पापा ने होला लाए थे। इत्ते सारे।”

“वो कहाँ से लाए थे? किसके खेत में बोए थे?”

“सर, वो हमारे फूफा ने रखे थे भूँज के।”

“तुमने खाए? कैसे लगते हैं?”

“अच्छे लगते हैं।”

“कब मिलते हैं? सर्दियों में मिलते हैं कि गर्मियों में?”

“कभी भी मिल जाते हैं।”

“अच्छा!”

“ये सभी के खेत में लगे हैं सर।”

“सब के खेत में?”

“हूँ, आधे के खेत में ये धान-वान लगे हैं, दाल, सोयाबीन।”

“ये सोयाबीन कब कटेगी?”

“आधी कट गई। भौत दिन हो गए। लिया था खेत।”

“लिया था! किससे?”

“भौत सारे पैसे दे के।”

“अच्छा! कब?”

“भौत दिन हो गए।”

“तुम्हारा अपना खेत है या किसी का बटाई पे लिया हुआ है?”

“हूँ।”

“तुम्हारा अपना है कि किसी से बटाई पे लिया है?”

“हाँ सर, हमारी मुक्कू जीजी खत्म नहीं हुई थीं तभी ले लिया था। मुक्कू जीजी खत्म नहीं हुई थीं तब...तभी से हम काट रहे हैं।”

“मुक्कू जीजी कौन थीं?”

“हमारे घर के सामने थीं।”

“सामने रहती थीं! घर में रहती थीं या सामने?”

“हमारे सामने। हमारे घर कुछ भी बनता तो जातीं, खा के आ जातीं।”

“अच्छा! कितनी बड़ी थीं?”

“सर, औड़ बड़ी थीं, तुमारे बिराबर।”

“मेरे बराबर? कैसे खत्म हो गई?”

“सर वो जा रई थी उधर, तो उसे सफेद मुण्डा वाला खूब बड़ा! तो वो डर गई।”

“अच्छा! डर गई? किससे?”

“उसी से।”

“किससे?”

“सफेद मुण्डा वाले से। उसका इतना बड़ा मुण्डा था। वो डर गी।”

“फिर?”

“सुधान के घर गई... नहीं, मोनान

के घर गई तो जगाई। नहीं जगे, सो रहे थे। उनका घर उनके घर के सामने है।”

“किनके घर गई वो?”

“उनका घर इधर, उनका घर इधर।”

“तो सर उनकी बस में बिठा के ले गए थे। उन्ने बस लाई थी। उसको लेगे। वो ठीक नहीं हुई थी। खत्म हो गी।”

“कौन ले गया था?”

“विनोद भैया।”

“विनोद भैया, हॉस्पिटल ले गए थे?”

“हूँ। सर, खून ही खून थूक री थी।”

“विनोद भैया कौन हैं?”

“हमारे घर के सामने रहता।”

“अच्छा, मुक्कू जी के भैया हैं विनोद भैया?”

“उनके ही घर में रहता था।”

“अच्छा, सफेद मुण्डा वाला कौन था?”

“सर वो भूत जैसा दिखता है।”

“अच्छा!”

“हूँ।”

“जब वो खत्म भैय थी तो हम दूध देने आए थे तीनों। पवन, मदन, मढ़िया और मैं, चार।”

“तो, अब कहाँ जाओगे?”

“सर, कहीं नहीं, खेलेंगे।”

“अपने खेत पे नहीं जाओगे?”

“ऊँ...हूँ।” (मुण्डी हिला कर।)

“खूब दूर है सर हमारा खेत।”

“कितना बड़ा खेत है?”
 “सर जी, वहाँ से लेकर इतई स्कूल तक। लम्बे होते खेत, खूब बड़े!”
 “तुम्हारे पास भैंस भी है?”
 “नहीं, सर इनके पास है।”
 (संदीप की ओर इशारा करते हुए)
 “इनके पास तीन हैं सर। दो भैंस और एक पड़िया। इनकी गैया जनने वाली है।”

“हमारी एक गैया मर गई सर। एक... गैया हमारी थी और उसका एक बच्चा था। वो मर गई सर।”

“मर गई?”

“हाँ।”

“भैंस या गैया?”

“एक भैंस भी थी। वो मर गई। वो कूद गई थी।”

“कहाँ से?”

“सर वो ऐसे ही कूद लगाती थी। सर जी एक हमारी भैंस थी, सीधी-साधी। वो मारती नहीं थी। हम उसके ऊपर बैठते थे।”

“अच्छा!”

“वो एक बाल्टी और आधी बाल्टी दूध देती थी।”

“अच्छा, इतना दूध देती थी? उस दूध का क्या करते थे?”

“सर, पीते थे। एक बार हमारे पापा दूध निकाल रहे थे। हमने अपने पापा से दूध लगवा लिया था।”

“क्या?”

“गिलास में दूध।”

“थन से?”

“हाँ।”

“अच्छा लगता है?”

“हाँ सर। उसके थन मोटे-मोटे थे।”

“तु तो बड़ा पतला-सा है!”

“हाँ सर।”

“क्यों?”

“कम दूध पीता था।”

“ज्यादा पिया कर।”

“हाँ सर। एक दिन मैंने एक गिलास पिया था।”

यह संवाद कई मायनों में बड़ा दिलचस्प है और इसे कई धरातलों पर विश्लेषित किया जा सकता है। पहली बात यह है कि यह निजी किस्म का संवाद कक्षा के भीतर ही हो रहा है और छात्र और शिक्षक के बीच हो रहा है। यह बहुत ही महत्वपूर्ण बात है। जब बच्चा पहली बार स्कूल आता है तो सबसे पहले उसका सामना स्कूल की श्रेणीबद्ध व्यवस्था से होता है जिसे स्कूल ने अनुशासन बनाए रखने के लिए तैयार किया है। यह श्रेणीबद्धता शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों से दूरी बनाने के लिए इस्तेमाल की जाती है ताकि बच्चे शिक्षक के सिर पर न चढ़ें। यह दूरी बनाकर रखना एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। अनुशासन बनाए रखने के नाम पर बार-बार बच्चों को चुप रहने के लिए कहा जाता है। उन्हें विचार-विमर्श से भी रोका जाता है, और चिन्तन हो सके इसकी सम्भावनाएँ भी नहीं बन पाती हैं। उपरोक्त उदाहरण हमें इस बात की एक झलक

देता है कि अगर शिक्षक इस दूरी को कम करने को तैयार हो तो विद्यार्थी को शिक्षक के साथ एक स्वस्थ परिचय बनाने में मदद मिलती है। आगे चलकर यह बात छात्र व शिक्षक के बीच संवाद स्थापित करने में आवश्यक भूमिका अदा करती है।

इस उदाहरण में हमें व्यक्तिगत अनुभव का आदान-प्रदान देखने को मिलता है जिसमें छात्र स्कूल के बाहर की अपनी ज़िन्दगी के बारे में बता रहा है। बात करते-करते वह अपने पड़ोस में रहने वाली मुकू जीजी और उसकी मृत्यु के विषय में चर्चा करने लगता है। मृत्यु का कारण उसे नहीं मालूम। वह दो घटनाओं को जोड़कर एक कहानी बुनने का प्रयास कर रहा है। उसका खेती-किसानी का विवरण उसकी सामाजिक-आर्थिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का आभास देता है और हमें बताता है कि खुद दीपक इस सब में कैसे शामिल है। यानी उसका इन चीज़ों के प्रति क्या दृष्टिकोण है, उसकी दिलचस्पियाँ क्या हैं, उसे क्या पसन्द-नापसन्द है, और वह इन चीज़ों को कितनी गम्भीरता से लेता है। चाहे मुकू जीजी की बात हो या दूध पीने को लेकर हुई बात, ये सभी बातें मिलकर एक छवि बनाती हैं जो शिक्षक को दीपक के परिवेश से साक्षात्कार करवाती है।

आपने गौर किया होगा कि शिक्षक

कुछ शब्दों के अर्थों को नहीं समझ पा रहा है। शिक्षक की यह अनभिज्ञता बच्चों के लिए बड़ी सहज है। दीपक की अपनी भाषा बुन्देली है और वह लगातार उन्हीं शब्दों का उपयोग कर रहा है जो उसकी भाषा से हैं। यही कारण है कि वह निर्बाध ढंग से अपनी बात कहता जा रहा है। बच्चे की अपनी भाषा की अनुपस्थिति उसकी चुप्पी का कारण बन सकती है और उसकी उपस्थिति उसे अच्छा वक्ता भी बना सकती है। यह बाद वाली बात इस उदाहरण में स्पष्ट है। लेकिन शिक्षक इसमें क्या कर रहा है? मुख्यतः वह एक अवसर प्रदान कर रहा है जिसमें छात्र भाषा, विचार, विषय, और 'गुरुजी' की चिन्ता किए बगैर अपने अनुभव बाँट रहा है। कई मौके ऐसे हैं जब छात्र शिक्षक को कुछ शब्दों के अर्थ बता रहा है जबकि शिक्षक अपनी अनभिज्ञता को स्वीकार कर रहा है। पर क्या इतना कहने भर से हम मान लें की यह बातचीत कक्षा व स्कूली शिक्षा में कोई उपयोगिता रखती है?

लोक शिक्षा पद्धति

इस सवाल का जवाब हम जीरोम ब्रूनर¹ (जन्म 1915) की मदद से दे सकते हैं। उनका मानना है कि शिक्षक के लिए यह जानना ज़रूरी है कि उसके विद्यार्थी क्या सोचते हैं, कैसे सोचते हैं, और उन्हें किस तरह से

¹ ब्रूनर: प्रसिद्ध अमेरिकी मनोवैज्ञानिक और शिक्षाविद।

मदद दी जा सकती है। ब्रूनर के शब्दों में हम इसे लोक शिक्षा पद्धति (folk pedagogy) कहेंगे। ब्रूनर कहते हैं कि अब यह एक स्थापित तथ्य है कि बच्चे अपने समाज व संस्कृति को ग्रहण करते हुए बड़े होते हैं। समाज व संस्कृति उनके सीखने के स्वभाव को निर्धारित करते हैं। बहुत हद तक इस स्वभाव से तय होता है कि बच्चा क्या सीखेगा और कैसे सीखेगा या किन बातों को सीखना उसके लिए सरल होगा और किनको सीखना मुश्किल। एक शिक्षक के लिए ये महत्व की बातें हैं।

दीपक के उदाहरण को ही लें। वह अभी मुश्किल से 7-8 साल का ही है, फिर भी खेती-किसानी, खरीद-फरोख्त आदि के बारे में कितनी बातें जानता है और उन पर समझ भी बना रहा है। शिक्षक को यह समझ, उसकी शिक्षण पद्धति के सुधार और बदलाव को तय करने में मदद कर सकती है। इस उदाहरण में शिक्षक के पास मौका है कि वह जान सके कि दीपक रिश्तों, मृत्यु, भय, अच्छा, बुरा आदि अवधारणाओं को कैसे समझता है।

इस उदाहरण से हमें यह पता चलता है कि कोई बच्चा जब स्कूल में आता है तो वह कोरी स्लेट नहीं होता, न ही ऐसा खाली बर्तन जिसे ज्ञान तत्व से भरना है। बल्कि वह काफी समझ-बूझ के साथ स्कूल में दाखिल

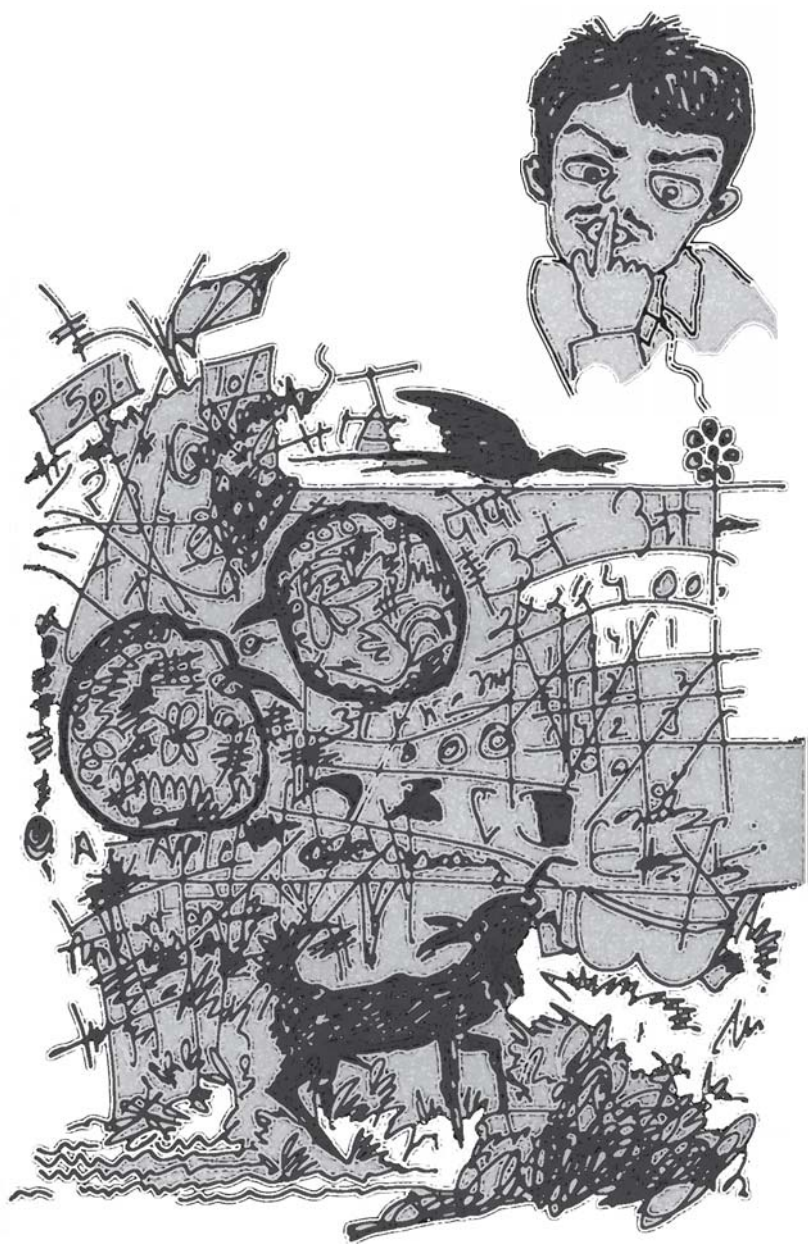
होता है। उसका अपने चारों तरफ की दुनिया से एक सक्रिय संवाद चल रहा होता है। वह अपने आस-पास की दुनिया के बारे में काफी कुछ जानता होता है, और बातचीत से हमें पता चलता है कि वह कितना जानता है और उसे कहाँ मदद की ज़रूरत है।

परन्तु इस बातचीत को एक प्रक्रिया के रूप में समझने की भी ज़रूरत है, क्योंकि वायगोत्सकी² (1896-1934) के विचार में भाषा एक उपकरण के रूप में भी काम करती है। इसका उपयोग करते हुए व्यक्ति अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है और यह मस्तिष्क के विकास की प्रक्रिया का एक चरण होता है। यह विकास व्यक्ति और उसके समाज के बीच चल रहे लगातार संवाद से गति पाता है।

कक्षा भी इस समाज का एक प्रतिरूप है जिसमें चल रहा संवाद दीपक के लिए उसी तरह की सम्भावनाएँ उपलब्ध करा रहा है जो कक्षा से बाहर चल रहा संवाद उपलब्ध कराता है। दूसरी तरफ, यह संवाद शिक्षक को बताता है कि दीपक ग्रामीण समाज से सम्बन्ध रखता है और खेतों, मवेशियों, दूध, भूत आदि के बारे में बात कर सकता है।

अक्सर कक्षाओं में बहुत ही औपचारिक किस्म के संवाद की अपेक्षा होती है जिसमें विद्यार्थी को अपने

² वायगोत्सकी: विख्यात रशियन कंस्ट्रक्टविस्ट मनोवैज्ञानिक।



विचारों को व्यवस्थित रूप से रखना होता है। लेकिन इसके लिए प्रशिक्षण की ज़रूरत होती है, साथ ही उम्र से जुड़े कुछ अनुभवों की। तब ही छात्र यह सब कर पाने में सक्षम होता है। परन्तु क्या हम पहली-दूसरी कक्षाओं में इस प्रकार के संवाद की अपेक्षा कर सकते हैं? इस आयु में छात्र जो जानता-समझता है वह उसके व्यक्तिगत अनुभवों का ही परिणाम होता है। यानी वे चीज़ें जो वह अपने आस-पास के वातावरण से सीखता है। इस स्तर पर वह उन्हीं चीज़ों पर चर्चा कर सकता है जो उसके पूर्व ज्ञान का हिस्सा हों। इस ज्ञान को स्वीकार करना और उसके अनुरूप कक्षा को ढालना, चाहे वह सामग्री निर्माण के स्तर पर हो या विचार-विमर्श के स्तर पर, बहुत आवश्यक होता है। यह कैसे हो, शिक्षक कक्षा में संवाद के माध्यम से ही इस बारे में सूचना प्राप्त करता है।

रिश्तों की गुणवत्ता

इस संवाद को एक अन्य दृष्टिकोण से भी समझा जा सकता है। एडीसन स्टोन इसे 'आपसी रिश्तों की गुणवत्ता' के नाम से सम्बोधित करते हैं, जिसमें आपसी विश्वास एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब एक बच्चा नया-नया स्कूल आता है तो एक सहज संवाद बच्चे व शिक्षक के इस रिश्ते को बनाने में मदद करता है। यह रिश्ता उन्हें आने वाले समय में कक्षा में होने वाली गतिविधियों के दौरान साथ-साथ काम करने के लिए एक मज़बूत

आधार दे सकता है। घरों में बच्चे व माँ-बाप के बीच यह रिश्ता स्वाभाविक तौर पर बन जाता है। या फिर यूँ कहना चाहिए कि बच्चे व अभिभावक के रिश्ते में यह एक अन्तर्निहित तत्व होता है। परन्तु शिक्षक-छात्र के बीच भी ऐसा ही हो यह ज़रूरी नहीं। इसलिए शायद एक शिक्षक को इस रिश्ते व आपसी विश्वास को बनाने व बढ़ावा देने का काम एक जिम्मेदारी की तरह निभाना पड़ सकता है।

हमारे स्कूलों में अक्सर दो तरह के बच्चे आते हैं। एक वो जो स्कूल के लिए, स्कूल के माहौल के लिए अच्छे से तैयार हैं। यानी जिनके घरों में शिक्षित लोग हैं, जो काफी ऐसी बातें अपने बच्चों को सिखा पाते हैं जो स्कूली संस्कृति का हिस्सा होती हैं। परन्तु दूसरी तरफ वे बच्चे होते हैं जो इन सुविधाओं से वंचित होते हैं और उनका स्कूल और वहाँ की संस्कृति से करीबी परिचय नहीं होता। यहाँ बहुत कुछ उन्हें नया लगता है। ऐसे में शिक्षक से करीबी रिश्ता बना पाना और अलग-अलग स्तरों पर उससे बात कर पाना बच्चे के लिए काफी लाभकारी होता है, जो शिक्षक को भी बच्चे को समझने का अवसर देता है।

संवाद की थकान

इस विषय की गम्भीरता को समझने के लिए यहाँ मैं पाओलो फ्रेरे³ (1921-1997) द्वारा उपयोग की गई धारणा 'नैरेशन सिक्नेस' यानी 'संवाद की

